महाकवि रइधूकी एक अप्रकाशित सचित्र कृति 'पासणाहचरिउ'

प्रो० डॉ० राजाराम जैन

१९वीं सदीके प्रारम्भसे ही भारतीय आचार, दर्शन, इतिहास एवं संस्कृतिके सर्वेक्षण-प्रसंगोंमें तीर्थङ्कर पार्श्वका व्यक्तित्व बहुचर्चित रहा है। पाश्चात्त्य विद्वानोंमें कोल्ब्रुक, स्टीवेंसन, एडवर्डटॉमस, शार्पेंटियर, गेरिनो, इलियट, पुसिन, याकोबी, एवं ब्लूमफील्ड तथा भारतीय विद्वानोंमेंसे डॉ० भंडारकर, बेल्वेल्कर, डॉ० दासगुप्ता, कोसम्बी एवं डॉ० राधाकृष्णन प्रभृति विद्वानोंने उन्हें सप्रमाण ऐतिहासिक महापुरुष सिद्ध किया है तथा उनके महान् कार्योंका मूल्यांकन करते हुए उनके सार्वभौमिक रूपका विशद विवेचन भी किया है। प्राचीन भारतीय जैनेतर साहित्य एवं कलामें भी वे किसी न किसी रूपमें चर्चित रहे हैं। जैन कवियोंने भी विभिन्न कालोंकी, विभिन्न भाषा एवं शैलियोंमें अपने विविध ग्रन्थोंके नायकके रूपमें उनके सर्वाङ्गीण जीवनका सुन्दर विवेचन किया है। इसी पूर्ववर्ती साहित्य एवं कलाको आधार मानकर मध्यकालीन महाकवि रइधूने भी गोपाचलके दुर्गके विशाल, सुशान्त एवं सांस्कृतिक प्राङ्गणमें बैठकर 'पासणाहचरिउ' नामक एक सुन्दर काव्यग्रन्थ सन्धिकालीन अपभ्रंश-भाषामें निबद्ध किया था, जो अभी तक अप्रकाशित है। उसकी एक प्रति दिल्लीके श्वेताम्बर जैन शास्त्र भण्डारमें सुरक्षित है।[1] उसीके अध्ययनके निष्कर्ष रूपमें उसका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

उक्त 'पासणाह चरिउ' महाकवि रइधूकी अन्य रचनाओंकी अपेक्षा एक अधिक प्रौढ़ साहित्यिक रचना है। स्वयं कविने ही इसे 'काव्य रसायन'की संज्ञासे अभिहित किया है। ग्रन्थ-विस्तारकी दृष्टिसे इसमें कुल ७७ × २ पृष्ठ हैं तथा ७ सन्धियाँ एवं १३६ कड़वक हैं। इनके साथ ही इसमें मिश्रित संस्कृत-भाषा निबद्ध ५ मङ्गल श्लोक भी हैं। प्रथम एवं अन्तिम सन्धियोंमें ग्रन्थकारने अपने आश्रयदाता, समकालीन भट्टारक एवं राजाओंका विस्तृत परिचय देते हुए तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियोंकी भी सरस चर्चाएँ की हैं। अवशिष्ट सन्धियोंमें पार्श्व प्रभुके सभी कल्याणकोंका सुन्दर वर्णन किया गया है और प्रसंगवश स्थान-स्थानपर चित्रों द्वारा ग्रन्थकारकी भावनाको गहन बनानेके लिए चित्रोंका माध्यम भी अपनाया गया है। प्रति प्राचीन होनेके कारण जीर्ण-शीर्ण होनेकी स्थितिमें आ रही है। इसके प्रति पृष्ठमें ११-११ पंक्तियाँ एवं प्रति पंक्तिमें लगभग १४-१६ शब्द हैं। कृष्णवर्णकी स्याहीका इसमें प्रयोग किया गया है। किन्तु पुष्पिकाओंमें लाल स्याहीका प्रयोग हुआ है और संशोधन या सूचक चिन्हके रूपमें कहीं-कहीं शुभ्र वर्णकी स्याहीका भी प्रयोग हुआ है। रइधूकृत 'पासणाह चरिउ' की अन्य प्रतियाँ जयपुर, ब्यावर एवं आराके शास्त्र-भण्डारोंमें भी मुझे देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। किन्तु प्रस्तुत प्रतिकी जो कुछ विशेषताएँ एवं नवीन उपलब्धियाँ हैं वे निम्न प्रकार हैं :—

१. प्राचीनता, २. प्रामाणिकता, ३. पूर्णता, ४. सचित्रता एवं ५. ऐतिहासिकता,

---

१. उक्त प्रतिके सम्बन्धमें मुझे सर्वप्रथम श्रद्धेय बाबू अगरचन्द्रजी नाहटा सिद्धान्ताचार्यने सूचना दी थी। उनकी इस सौजन्यपूर्ण उदारताके लिए लेखक उनका आभारी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीनता एवं प्रामाणिकता

विविध अन्तर्बाह्य साक्ष्योंके आधारपर मैंने महाकवि रइधूका समय वि० सं० १४४०-१५३० के मध्य माना है। स्वयं कविद्वारा लिपिबद्ध अभीतक कोई भी रचना हमारे लिए हस्तगत नहीं हो सकी थी तथा उनके ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ भी प्रायः वि० सं० १५४८ के बाद ही की उपलब्ध होती हैं, इसके पूर्व की नहीं। किन्तु प्रस्तुत रचना इन सबके अपवाद स्वरूप ही उपलब्ध हुई है और लिपिकालकी दृष्टिसे रइधूसाहित्यकी यह प्राचीन प्रतिलिपि सिद्ध होती है। इसकी पुष्पिकामें इसका प्रतिलिपि काल वि० सं० १४९८ माघवदी २, सोमवार अंकित है।[1] इसके पाठ शुद्ध एवं लिपि सुस्पष्ट है। इसकी हस्तलिपि एवं स्याहीकी एकरूपता, लिपिकारकी सुबद्धता एवं साहित्यके प्रति उसकी आस्थापूर्ण अभिरुचि, ग्रन्थकारके जीवनकालमें ही किंवा उसके समक्ष ही अथवा निर्देशनमें लिपिबद्ध किये जाने तथा ग्रन्थकारके आश्रयदाताके धर्मनिष्ठ सुपुत्रकी ओरसे इस ग्रन्थकी प्रतिलिपिकी आयोजना होनेके कारण इस ग्रन्थकी प्रामाणिकतामें किसी भी प्रकारके सन्देहकी स्थिति नहीं रह जाती।

पूर्णता

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके साथ कई घोर दुर्भाग्योंमेंसे एक महान् दुर्भाग्य यह भी रहा है कि वे प्रायः अपूर्ण रूपमें उपलब्ध होते हैं। कुछ साहित्यिक-द्रोही, अवसर पाते ही उनके प्रथम एवं अन्तिम या कुछ मर्मस्थलों वाले पृष्ठोंको नष्ट-भ्रष्ट, अपहृत या उनका वाणिज्य करके ग्रन्थराजके सारे महत्त्वको समाप्त कर देते हैं। फिर सचित्र ग्रन्थोंके साथ तो यह द्रोह और भी अधिक रहा है। अभिमानमेरु पुष्पदन्त कृत जसहरचरिउ, महाकवि रइधूकृत जसहरचरिउ आदि ग्रन्थ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं किन्तु प्रस्तुत प्रति सौभाग्यसे पूर्णरूपमें सुरक्षित है। अतः चित्रकला और विशेषतः जैन चित्रकलापर ऐतिहासिक प्रकाश डालने वाली इस प्रतिकी परिपूर्णता स्वयंमें ही एक महान् उपलब्धि है।

सचित्रता

प्रस्तुत ग्रन्थकी सबसे प्रमुख विशेषता इसकी सचित्रता है। सम्पूर्ण ग्रन्थमें कुल मिलाकर ६४ चित्र हैं, कुछ तिरंगे, कुछ चौरंगे एवं कुछ बहुरंगे। इन चित्रोंका निरीक्षण करनेसे यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि लिपिकारने लिपि करते समय पृष्ठोंपर यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार चौकोर स्थान छोड़ दिये हैं, जिनपर चित्रकारने अपनी सुविधानुसार प्रसंगवश लघु अथवा विशाल चित्रोंका अंकन किया है। इन चित्रोंको अलंकृत बनानेका प्रयास स्पष्टरूपसे दिखाई पड़ता है। पुरुषाकृतियोंका अंकन करते समय उनके केशपाशोंको एक विचित्र पद्धतिसे पृष्ठ भागकी ओर मोड़कर बनाया गया है। दाढ़ी एवं मूँछ ऐसी प्रतीत होती है कि मानों कोई कूँची चिपका दी गई हो। नेत्र अधिक विस्तृत एवं बाहरकी ओर इस प्रकार उभरे हैं, जैसे उन्हें अलगसे जड़ दिया गया हो। नाक बड़ी नुकीली, टुनगे वाली तथा नीचेकी ओर झुकी हुई है। ठुड्डी आमकी गुठलीके सदृश, ग्रीवा वलियों युक्त एवं इठी हुई, हाथों एवं पैरोंकी अँगुलियाँ कुछ बेडौल तथा ऐसी प्रतीत होती हैं, जैसे कपड़ोंकी बत्तियाँ मढ़ दी गई हों। वक्ष स्थल इतना अधिक उभारा गया है कि वह कभी-कभी महिलाके वक्षस्थलका भ्रम पैदा कराने लगता है। वस्त्रोंमें कहीं कभी अंगरखा भी अंकित किया हुआ मिलता है, वैसे इनके शरीरपर वस्त्रोंकी संख्या अत्यल्प है—एक उत्तरीय एवं एक अधोवस्त्र।

---

१. दे० मूलप्रति पृष्ठ ७६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरीय वस्त्रका छोर पार्श्वमें अथवा पीछेकी ओर फहराता हुआ अंकित है। मोटे किनारेवाले अधोवस्त्रको चुन्नट देकर पहिना हुआ दिखाया गया है। ये सभी वस्त्र कुछ मोटे किन्तु अलंकृत प्रतीत होते हैं।

आभूषणोंमें कहीं-कहीं माथेपर कलँगीदार रत्नजटित स्वर्णमुकुट, कानोंमें कुण्डल तथा हाथोंमें बाजूबंद एवं कड़े पहिने हुए हैं।

देवों एवं पार्श्वनाथके दि० मुनिपद एवं कैवल्यप्राप्तिके समयके चित्र भी इसमें अंकित किये गये हैं। देवोंको अर्धनग्न मुद्रामें प्रदर्शित किया गया है। वे एक मोटे किनारेवाला रंगीन अधोवस्त्र धारण किये हुए हैं, जो घुटनेसे कुछ नीचे तक लटका हुआ है तथा उसकी चुन्नट कुछ आगेकी ओर उड़ती हुई दिखाई गई है। उनका बायाँ हाथ आधा गिरा हुआ एवं दायाँ हाथ तीर्थङ्करपर चँवर ढुराता हुआ दिखाया गया है। उनके माथेपर मणिरत्न जटित कुछ निचली भित्ती वाला, कर्णपर्यन्त माथा ढकने वाला, कलँगीदार स्वर्णमुकुट है। वे कानोंमें विशाल चक्राकार कर्णफूल, गलेमें सटा हुआ दो लड़ीका मोटे गुरियों वाला हार, कलाईमें मोटे-मोटे कड़े एवं दो लड़ीका बाजूबन्द धारण किये हुए हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थके मुखपृष्ठपर पार्श्वप्रभुका पद्मासन युक्त एक चित्र है, जिसके दोनों पार्श्वोंमें चँवर ढुराते हुए पार्श्वचर-सेवकके रूपमें दो देवोंका अंकन है। पीछेकी ओर कुछ ऊँचाईपर दो ऐरावत हाथी अपने शुण्डादण्डोंमें मंगलकलश लिये हुए दिखाये गये हैं। उसकी पृष्ठभूमिमें शिखरबन्द विशाल एक तोरणों-वाला द्वार है, जिसके दोनों ओर छोटी-छोटी ३–३ मठियाँ आलिखित हैं। बीचके शिखरपर दो विशाल ध्वजाएँ विपरीतमुखी होकर फहरा रही हैं।

तीर्थंकर मूर्त्तिके चित्रणके समय तदनुसार वातावरणकी व्यंजनाका प्रयास दिखाई पड़ता है। आजू-बाजूमें चँवर, माथे पर छोटे-बड़े छतों वाला तथा मोतीकी लड़ोंसे गुंथा हुआ फुंदनोंसे युक्त छत्र तथा अगल-बगलमें दो धर्मचक्र बने हुए हैं। प्रतिके प्रारम्भिक पृष्ठपर दो चित्र बड़े ही आकर्षक एवं भव्य बन पड़े हैं। एक चित्रमें पाँच व्यक्ति अंकित हैं। एकके पीछे एक, इस प्रकार तीन व्यक्ति एक पंक्तिमें तथा सभी अपने एक-एक घुटने के बलपर बैठे हैं। उनके सम्मुख ही आगे-पीछे अन्य दो व्यक्ति स्थित हैं। पाँचोंमेंसे मध्यवर्ती व्यक्तिका एक हाथ तो घुटनेपर स्थित है। तथा दूसरा हाथ धर्मोपदेश देनेके कारण ऊपरकी ओर संकेतकर कुछ समझाता हुआ दिखाया गया है। बाकीके सभी व्यक्तियोंके दोनों-दोनों हाथ जुड़े हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकारने इस चित्रमें महाकवि रइधूकी गुरु-परम्पराका अंकन किया है। उपदेशकके रूपमें भ० सहस्र कीर्ति हैं तथा श्रोताओंमें उनके शिष्य क्रमशः भट्टारक गुणकीर्ति तथा उनके भाई एवं शिष्य भ० यशःकीर्त्ति तथा यशःकीर्त्तिके शिष्य खेमचन्द्र एवं महाकवि रइधू। इस चित्रवाले पृष्ठपर वर्णनप्रसंग भी उक्त व्यक्तियोंका ही है। हमारे इस अनुमानका आधार पूर्ववर्त्ती अन्य सचित्र हस्तलिखित प्रतियाँ ही हैं। 'त्रिलोकसार' की सचित्र प्रतिलिपिमें उसके लेखक सि० च० नेमिचन्द्र (११वीं शती) एवं सुगन्धदशमी कथामें उसके लेखक जिनसागर (१२वीं शती) जिसप्रकार चित्रित हैं, ठीक वही परम्परा इस ग्रन्थमें भी अपनाई गई होगी, इसमें सन्देह नहीं। अतः यदि मेरा उक्त अनुमान सही है तब भट्टारकोंके साथ-साथ ही रइधू जैसे एक महाकविके अत्यन्त दुर्लभचित्रकी एक सामान्य रूपरेखा भी हमें आसानीसे उपलब्ध हो जाती है, जिसका कि अभाव अभीतक खटकता था। इस उपलब्धिको हम मध्यकालीन साहित्यकारों सम्बन्धी उपलब्ध अभीतक समस्त जानकारियोंमेंसे एक विशेष ऐतिहासिक महत्त्वकी उपलब्धि मान सकते हैं। दूसरा भव्यचित्र इसी चित्र की दायीं ओर चतुर्भुजी सरस्वतीका चित्रित है। उसके एक दायें हाथमें कोई ग्रन्थ सुरक्षित है तथा बायें हाथमें वीणा। बाकी दो हाथोंमें क्या है, यह स्पष्ट नहीं होता। उसके वाहनका भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पता नहीं लगता। उसकी पृष्ठभूमिमें एक भवन है, जिसके मध्यमें एक विशाल शिखर तथा आजू-बाजूमें ३-३ छोटे-छोटे शिखर और उनके ऊपर विपरीत मुखी छोटी-बड़ी दो-दो विशाल फहराती हुई नुकीली ध्वजाएँ हैं। अन्य कई साक्ष्योंके आधार पर यह सिद्ध होता है कि महाकवि रइधू सरस्वतीके महान् उपासक थे। उन्होंने अपनेको 'सरस्वती निलय' एवं 'सरस्वती निकेतन' जैसे विशेषणोंसे विभूषित किया है। एक स्थान-पर उन्होंने यह भी लिखा है कि प्रारम्भिक जीवनमें अकस्मात् ही स्वप्नमें उन्हें सरस्वतीने आकर कवि बननेकी प्रेरणा दी थी और उसमें सभी प्रकारकी सफलता का उसने उन्हें आश्वासन दिया था। कविने उसीकी आज्ञाको मानकर कविताके क्षेत्रमें प्रवेश किया और फलस्वरूप वे विख्यात महाकविके रूपमें साहित्यिक क्षेत्रमें प्रसिद्ध हो गये[1]। कोई असम्भव नहीं, यदि महाकवि कालिदासके समान ही महाकवि रइधूको भी सरस्वती सिद्ध रही हो। क्योंकि अपने छोटेसे जीवनकालमें ही २३से भी अधिक महान् एवं विशाल ग्रन्थोंकी रचना कर पाना सामान्य कविके लिए सम्भव नहीं था। अपभ्रंशके क्षेत्रमें इतने विशाल समृद्ध साहित्यका प्रणेता रइधूको छोड़कर अभी तक अन्य कोई भी दूसरा कवि अवतरित नहीं हुआ।

जहाँ तक महिलाओंके चित्रालेखनके प्रसंग हैं, उनमें उनके नेत्र मत्स्याकृतिके विशाल, किन्तु उनकी पुतलियाँ छोटी चित्रित हैं एवं कटाक्षरेखा कर्णपर्यन्त चित्रित की गयी हैं। नेत्रोंको तो इतना अधिक उभारा गया है कि किसी अजनबीको उन्हें देखकर चश्मा लगानेका भ्रम हो सकता है। उनके केशपाश गुंथे हुए एवं माथेके पीछे कुछ ऊँचाई पर वर्तुलाकार जूड़ाकृतिमें बद्ध हैं। उनकी नाक बड़ी एवं नुकीली है। कहीं-कहीं नाक एवं मुख एक दूसरेमें प्रविष्ट करनेकी होड़ लगाये हुए जैसे दिखायी पड़ते हैं। ओष्ठ फैले हुए, चिबुक नुकीली एवं छोटी, श्रवण अंडाकृति वाले एवं लघु हैं, किन्तु दोनों पयोधर चक्राकार एवं बेतरह उन्नत हैं। ऐसा लगता है कि उनकी विशालता दिखानेमें चित्रकारने कुछ अधिक जबर्दस्ती की है कटिभाग अत्यन्त सूक्ष्म तथा कहीं-कहीं अदृश्य जैसा प्रतीत होता है। इनकी गर्दन कुछ लम्बी एवं रेखांकित दिखायी देती है, किन्तु सभीके शरीर सुपुष्ट अंकित किये गये हैं।

महिलाओं द्वारा प्रयुक्त वस्त्रोंमें लंहगा, ओढ़नी एवं चोली जिसमें उदर भाग स्पष्ट रूपसे दृश्यमान है, प्रधान हैं। कहीं-कहीं ओढ़नीका अभाव भी है।

आभूषणोंकी दृष्टिसे महिलाओंके कानोंमें कानोंसे भी डेवढ़ा दुगुना, चक्राकार विशाल कर्णफूल, गलेमें बड़े-बड़े गुरियों वाली एकाधिक लड़ीकी माला एवं हाथोंमें ३-३या४-४ कड़े चित्रित किये गये हैं तथा नाकमें मोतीकी छोटी पोंगड़ी धारण किये हुए हैं। इनके हाथोंमें कंगन एवं पैरोंमें कड़े हैं, ललाटपर टीका भी दिखायी देता है। देवांगनाओंके चित्रणमें उक्त महिलाओंकी अपेक्षा बहुत कम अन्तर दर्शित किया गया है।

जहाँपर पुरुषों या महिलाओंको खड़ा अथवा बैठा दिखाया गया है वहाँ उन्हें देखनेसे ऐसा प्रतीत होगा, मानों वे चल रहे हों या चलनेके लिए उत्सुक हो रहे हों। तात्पर्य यह है कि उनमें स्फूर्तिकी झलक दिखायी देती है। कहीं-कहीं पुरुष दण्ड धारण किये हुए हैं किन्तु हाथों में उसे इस प्रकार चित्रित किया गया है, मानों वे कम वजनकी मामूली कोई छोटी-मोटी दातुन या सलाई पकड़े हुए हों।

प्रकृति चित्रणके प्रसंगोंमें नदी, नद, सरोवर, उद्यान, मैदान, वृक्ष, हरी-भरी घास एवं वन आदिके रंगीन चित्रण किये गये हैं, किन्तु उन्हें जैसे नयनाभिराम, रम्य, गम्भीर एवं सजीव होना चाहिए था, उस भावका उसमें अभाव है। उदाहरणार्थ वृक्षकी आकृति ऐसी प्रतीत होती है जैसे किसी छोटी लचीली डंडीपर पत्तोंका ढेर सजा दिया गया हो। जंगलकी आकृति भी ऐसी प्रतीत होती है जैसे दीवालपर आड़ी-तिरछी रंगीन

१. सम्मइजिणचरिउ १।४।२-४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रेखाएँ खींच दी गयी हों। उद्यानके पेड़-पौधे या फुलवारी ऐसी दृश्यमान हैं जैसे घरमें गमलों या गुलदस्तोंपर कुछ कृत्रिम पेड़-पौधे या फूल सजा दिये गये हों।

युद्धके प्रसंगमें चित्र-विचित्र रंगोंसे भरे हुए सैनिकोंके चित्र हैं, जिनके हाथमें ढाल-तलवार एवं भाला है। चित्रके रंगोंकी दृष्टिसे उक्त चित्रोंमें प्रायः मौलिक रंगोंका ही प्रयोग पाया जाता है जैसे लाल, पीला, एवं सफेद। चित्रोंकी भूमिमें प्रायः लाल एवं पीले रंगोंका प्रयोग है, कहीं-कहीं हरे रंगका भी। कहीं-कहीं तो चित्रोंमें ये रंग इस प्रकारसे भरे गये हैं कि लगता है जैसे लीपा-पोती की गयी हो। इनमें सुन्दरता एवं सावधानीका अभाव आँखों को बहुत खटकता है। इसका एक कारण तो यह है कि चित्रकार जीवनसे प्रेरणा न लेकर रूढ़ियोंमें बँधे रहे, और दूसरा कारण यह रहा कि उसमें आध्यात्मिक भावनाकी पुट एवं धर्म वृत्तिकी गहरी छाप सर्वत्र रहनेके कारण शृंगारिकताका अंश खुलकर अपना साम्राज्य स्थापित न कर सका अथवा यों कहा जाय कि शृंगारिक वातावरण रहनेपर भी निर्वेदकी झलक उसमें समाहित रही। किन्तु इन सबके बावजूद भी श्री ब्राऊन, इस्टेल्ला क्रेमरेश, नानालाल मेहता प्रभृति विद्वानोंके अनुसार जैन-शैलीके इन चित्रोंमें निर्मलता, स्फूर्ति एवं गतिवेग है। भावाभिव्यञ्जनाकी दृष्टिसे ये चित्र बेजोड़ हैं। यद्यपि कम रंगोंका प्रयोग किया गया है, किन्तु यह काफी तेज है और उससे तात्कालिक रंग-प्रयोगकी विधिपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उनकी रेखाएँ यद्यपि मोटी हैं, फिर भी उनका भद्दापन, कुशल हाथोंकी स्वतन्त्रता. इस चित्र शैलीमें चित्रित अंग-प्रत्यंगों आदिका बेडौलपना, नेत्रोंको यद्यपि बहुत ही नयनाभिराम नहीं लगता, उनमें कठपुतलियोंका आभास सा होता है, किन्तु निस्सन्देह ही इस शैलीका भी अपना एक युग माना जायेगा। अपने युगमें गुजरात, मध्यप्रदेश, मालवा एवं दक्षिणी भारतमें भी यह शैली अत्यन्त प्रचलित रही। बिहार, बंगाल, उड़ीसा, नेपाल एवं तिब्बतमें भी इसका प्रभाव पहुँचा था। कुछ विद्वानोंका तो यहाँ तक कहना है कि चित्रकलाकी उक्त शैली ने बृहत्तर एशिया, मध्यएशिया, वर्मा एवं इंडोनेशिया प्रभृति देशोंको भी बहुत कुछ अंशोंमें प्रभावित किया था।

'पासणाहचरिउ'के चित्र क्रमागत चित्र-शैलीका एक परवर्त्ती रूप है, जो इतिहासकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह इसका महान् दुर्भाग्य है कि इस प्रकारकी चित्र शैलीके नामकरणकी समस्या अभी तक भी बनी हुई है। कोई इसे जैन-शैलीका, तो कोई अपभ्रंश-शैली, तो कोई पश्चिमी या गुजराती-शैलीका कहकर इसके रूपको अनिश्चित किये हुए हैं। इस दिशामें विद्वानोंको गहन अध्ययन करनेकी तत्काल आवश्यकता है। प्राचीन चित्रकलाकी समग्र सामग्रीका संकलन एवं उसका सर्वांगीण अध्ययन विश्लेषण एवं नामकरण करके चित्रकलाके इतिहासमें उसका अविलम्ब स्थान निर्धारण किया जाना चाहिए। क्योंकि यह शैली एक ओर जहाँ प्राचीन चित्रकलाका परवर्ती रूप है वहीं रोरिक, टैगोर अवनीन्द्र, नन्दराय, यामिनीराय, रविवर्मा, रविशंकर रावल एवं अमृता शेरगिलकी आधुनिक चित्र शैलियोंका पूर्ववर्ती रूप भी सिद्ध हो सकता है। अतः जैन चित्रशैलीकी शृंखलाको जोड़नेके लिए एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कड़ी सिद्ध हो सकती है। अतः विद्वानोंको इस उपेक्षित दिशामें कार्य करनेके लिए तत्पर होना ही चाहिए। यह समयकी माँग है।

इतिहास के नवीन तथ्य

इतिहासकी दृष्टिसे इस प्रतिकी सर्वप्रथम विशेषता यह है कि इसकी अन्त्य पुष्पिकामें तोमरवंशी राजाओंकी ग्वालियरी शाखाकी परम्परामें हुए महाराज डूँगरसिंहको 'कलिकाल चक्रवर्ती' पदसे विभूषित किया गया है। महाकवि रइधूके प्राप्त समस्त ग्रन्थों एवं उनकी प्रशस्तियोंके साथ-साथ तोमर राजाओंके आधुनिक शैलीमें लिखित इतिहास-ग्रन्थोंको पढ़नेका भी मुझे अवसर मिला है किन्तु डूंगरसिंहकी उक्त 'उपाधि' मुझे कहीं भी देखनेको नहीं मिली। यद्यपि डूंगरसिंहके प्रबल पराक्रम एवं राज्यकी सीमा-विस्तार के कारण उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त उपाधि प्राप्त होनी ही चाहिए थी, ऐसी मेरी धारणा थी तथा उसकी खोजमें मैं बड़ा व्यग्र भी था। प्रस्तुत ग्रन्थ-प्रशस्तिने उस व्यग्रताको दूर ही नहीं किया, बल्कि आधुनिक इतिहासकारोंको तोमरकालीन इतिहासको नवीन रूपमें लिखनेके लिए नयी प्रेरणा देकर नया प्रकाशन भी दिया है। इतिहासकी दृष्टिसे निस्सन्देह ही यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है तथा इस रूपमें एक महान् नरव्याघ्र, पराक्रमी, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं जैनधर्म-परायण राजाके महान् कार्योंका सही एवं न्यायपूर्ण मूल्यांकन कर उसे यथार्थ ही गौरव प्रदान किया गया है।

इसी प्रकार तोमर राजाओंकी परम्पराका वर्णन करनेवाले कुछ ग्रन्थोंमें राजा डूंगरसिंहके पिता गणपतिदेवका नामोल्लेख नही मिलता तथा विक्रमके बाद उनके पौत्र डूंगरसिंकके गद्दीपर बैठनेकी तुक समझ-में नहीं आती थी किन्तु इसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत ग्रन्थके लिपिकारकी प्रशस्तिसे हो जाता है। उसने जो लिखा है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विक्रमके बाद डूंगरसिंह नहीं, बल्कि गणपति गद्दीपर बैठे, भले ही वे अत्यल्पकालके लिए राजा बने हों और किसी कारणवश शीघ्र ही उनके पुत्र डूंगरसिंहको राजगद्दी सम्हालनी पड़ी हो। अत: वर्त्तमान कालमें प्रचलित तोमरोंकी वंशपरम्परा सम्बन्धी मान्यता भी उक्त प्रमाणके आधारपर भ्रामक सिद्ध हो जाती है।

"प्रस्तुत प्रतिकी दूसरी ऐतिहासिक महत्त्वकी विशेषता यह है कि इसकी लिपिकारकी प्रशस्तियोंमें पैरोज (फ़िरोज़) नामक सुल्तानकी चर्चा आती है। रइधूने अपने अन्य ग्रन्थोंमें भी सुल्तान पैरोज साह (फ़ीरोज़ शाह) की चर्चा करते हुए उसके द्वारा हिसारनगरके बसाये जानेकी चर्चा की है। एक अन्त्य-प्रशस्तिसे यह भी स्पष्ट है कि रइधूके एक आश्रयदाता तोसउ साहूका पुत्र वील्हा साहू पैरोज साहके द्वारा सम्मानित था। इससे यह प्रतीत होता है कि पैरोज साह जैनसमाज एवं जैनधर्मके प्रति काफी आस्था बुद्धि रखता था। असम्भव नहीं, यदि, उसके मन्त्रिमण्डलमें वील्हा जैसे कुछ राजनीतिज्ञ एवं अर्थशास्त्री श्रीमन्त जैन भी सम्मिलित रहे हों। रइधू-साहित्यके मध्यकालमें हिसार नगर जैनियों एवं जैन-साहित्यका बड़ा भारी केन्द्र था।

प्रस्तुत प्रतिकी तीसरी विशेषता यह है कि इसकी प्रतिलिपि कविके आश्रयदाता खेउसाहूके चतुर्थ पुत्र होलिवम्मुने करायी थी। ये होलिवम्मु या होलिवर्म्मा वही हैं जो सदाचारकी प्रतिमूर्ति थे तथा जिन्होंने अपने पिताकी तरह ही स्वयं भी महाकविको आश्रयदान देकर अपने जीवनमें आध्यात्मिक ज्योति जगानेवाली 'दशलक्षणधर्म जयमाला'[1] नामक रचनाका प्रणयन कराया था। इस दृष्टिसे प्रतिकी प्रामाणिकतामें दो मत नहीं हो सकते। यह भी सम्भव है कि होलिवम्मु द्वारा लिखित अथवा लिखवायी हुई अन्य रचनाएँ भी हों, जिनका प्रकाशन भविष्यके गर्भमें है।

इस प्रकार महाकवि रइधूकी प्रस्तुत 'पासणाहचरिउ'की विशेष प्रतिके सम्बन्धमें यहाँ चर्चा की गयी है। उसके कलापक्ष एवं भावपक्ष अथवा अन्य विषयोंको मैंने स्पर्श नहीं किया। इसी प्रकार कविके विषयमें भी मैंने कुछ भी चर्चा नहीं की। क्योंकि यहाँ मात्र उपलब्ध नवीन सचित्र प्रतिकी सचित्रता एवं उसकी अन्त्यप्रशस्तिमें उपलब्ध तथ्योंके अनुसार उसका ऐतिहासिक मूल्यांकन करनेका यत्किंचित् प्रयास किया है। कविके व्यक्तित्व एवं कृतित्वपर मैं कई शोध-निबन्धोंमें विस्तृत विचार कर चुका हूँ। यहाँ उनकी पुनरावृत्ति मात्र ही होती।

●

---

१. दे० दहलक्खणजयमालका अन्तिम पद्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org